हिन्दी मंदिर, प्रयाग के लिए
नवयुग साहित्य सदन, इन्दौर
द्वारा प्रकाशित

पहली बार : १९४८
मूल्य
बारह आना

मुद्रक
गोपीनाथ सेठ,
नवीन प्रेस, दिल्ली

परिचय

जेम्स एलेन की यह पुस्तक अंग्रेज़ी में बहुत लोकप्रिय हुई है। युवकों के चरित्र-निर्माण की दृष्टि से इस पुस्तक का बड़ा महत्व है। दृढ़ इच्छा-शक्ति अथवा संकल्पका मानव-जीवन और चरित्रपर जो प्रभाव पड़ता है उसे लेखक ने बड़े ओजस्वी शब्दों में व्यक्त किया है। जीवन के बीहड़ पथ पर दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ने के लिए यह पुस्तक प्रकाश-स्तंभ का काम देती है। डेल कारनेगी ने अपनी किताब 'Public speaking and influencing men in business' में इसके बारे में ठीक ही लिखा है:—

"यह छोटा-सा निबंध आज अनेकों व्यक्तियों के जीवन को प्रभावित कर रहा है। हमें ऐसे बहुतसे दृष्टान्तों का पता है, जब कि यह छोटी-सी रचना मानव-जीवन में अत्यंत शक्तिशाली सिद्ध हुई है।"

वस्तुतः यह पुस्तक स्माइल्स की 'चरित्र' एवं 'स्वावलम्बन' आदि प्रसिद्ध पुस्तकों की श्रेणी की है। निस्संदेह अंग्रेज़ी की भांति हिन्दी में भी यह रचना उपयोगी और लोकप्रिय साबित होगी।

—मुरलीधर श्रीवास्तव

सूची

संकल्प

: १ :

विचार और चरित्र

"मनुष्य अपने मन के विचार के अनुरूप होता है।" यह कहावत न केवल मनुष्य पर ही लागू होती है, वरन् इतनी व्यापक है कि मानव जीवनकी हरएक अवस्था और परिस्थिति तक इसकी पहुँच है। मानव अक्षरशः अपना विचार है, उसका चरित्र उसके समस्त विचारों का जोड़ है!

जैसे पौधा बीज से फूटता है, और उसके बिना अस्तित्व धारण नहीं कर सकता, उसी तरह मनुष्य का हरएक कर्म विचारके गुप्त बीजोंसे उत्पन्न होता है और उनके बिना प्रकट नहीं होसकता। यह आवेश-जन्य और विचार-जन्य दोनों प्रकार के कार्यों पर समान रूप से लागू होता है।

कार्य विचार का फूल तथा आनन्द और दुःख फल हैं। इस तरह मानव अपनी खेती के मीठे और कड़वे फलों का संग्रह करता है।

"मन के यदि विचार दूषित हैं निश्चय ही मिलता संताप
जिस प्रकार बैलों के पीछे पहिये खिचते आते आप।

शुद्ध-भाव मानव का रहता छाया-सा सुख अनुगामी
मैं मन के विचार से निर्मित, है विचार मेरा स्वामी !

मानव एक नियम-परिचालित विकास है; चातुरी द्वारा निर्मित रचना नहीं। दृश्यमान् पार्थिव जगत्के समान ही विचारके गुप्त राज्य में भी कारण और कार्य का नियम अटूट और अचल है। उच्च और धार्मिक चरित्र कृपा या संयोग का फल नहीं, बल्कि सद्विचार में सतत प्रयास का स्वाभाविक परिणाम और धार्मिक विचार के साथ दीर्घकालीन सम्बन्ध का फल है। इसी तरह नीच और पाशव चरित्र सर्वदा तुच्छ विचारों को आश्रय देने का परिणाम है।

मानव स्वयं बनता या बिगड़ता है। विचार के शस्त्रागार में वह आत्मघाती हथियार भी गढ़ता है और वही उन हथियारों को भी गढ़ता है जिनसे उसका हृदय आनन्द, बल और शान्ति का स्वर्गीय प्रासाद बन जाता है। विचार के उचित चुनाव और ठीक प्रयोग द्वारा मानव 'दिव्य पूर्णत्व' पर चढ़ता और दुरुपयोग से पशुता के धरातल पर गिरता है। इन्हीं दो सीमाओं के बीच चरित्र की वे सभी श्रेणियाँ पाई जाती हैं, जिनका निर्माता और स्वामी मानव है।

आत्मा-संबन्धी उन समस्त सुन्दर सत्यों में जो इस युग में पुनः स्थापित और प्रकाशित हुए हैं, दैवी सहानुभूति और विश्वास

पैदा करने में इससे अधिक आनन्ददायी और फलवान दूसरा कोई सत्य नहीं है, कि मानव अपने विचार का स्वामी, चरित्र का विधायक, अवस्था, वातावरण और भाग्य का रचयिता और निर्माता है।

क्योंकि मनुष्य बल, बुद्धि और प्रेम से पूर्ण जीव और अपने विचारों का स्वामी है, अतः उसके पास हरएक परिस्थिति की ऐसी कुंजी और परिवर्तन तथा नवजीवन लाने का साधन मौजूद है, जिनके द्वारा वह अपने को इच्छानुसार बना सकता है।

कमजोर-से-कमजोर और खराब-से-खराब हालत में भी मनुष्य हमेशा अपना स्वामी है। पर कमजोरी और गिरी दशा में वह उस बेवकूफ मालिक की तरह है जो अपनी गृहस्थी का कुप्रबन्ध करता है। जब मानव अपनी स्थिति पर विचार और निज सत्ता के मूल नियमों की खोज करने लगता है तब वह उस बुद्धिमान् मालिक की तरह बन जाता है, जो अपनी शक्तियों को बुद्धि द्वारा परिचालित करता और विचारों को फलदायक विषयों में लगाता है। निज विचार के मूलाधार नियमों की खोज से मानव ऐसा होशियार मालिक बन सकता है। यह खोज गहरी लगन, आत्म-मंथन और अनुभव का विषय है।

बहुत खोज और खोदने के बाद खान से भी सोना और हीरा मिलता है। मानव भी यदि निज आत्मा रूपी खान को गहरे तक

खोदे तो उसे अपनी सत्ता के सत्य स्वरूप का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। मानव निर्दोष रूप से यह सिद्ध कर सकता है कि वह स्वयं अपना चरित्र-निर्माता, जीवन-रचयिता और भाग्य विधायक है, यदि वह अपने विचारों पर देख-रेख और नियंत्रण रखे, परिवर्तन करता रहे और अपने और दूसरों के जीवन और परिस्थिति पर पड़ने वाले प्रभावों पर विचार करता रहे। उसे उचित है कि वह धैर्यपूर्वक अभ्यास और खोज द्वारा कारण और कार्य का सम्बन्ध स्थापित करते हुए नित्य की साधारण-से-साधारण घटना से अनुभव और ज्ञान प्राप्त कर लाभ उठावे। 'जिन ढूंढा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ।' खटखटाने वाले ही के लिए दरवाजा खुलता है। (He that seeketh findeth; and to him that knocketh it shall be opened.) धैर्य, अभ्यास और निरन्तर लगन द्वारा मानव ज्ञान-मन्दिर के द्वार में प्रवेश कर सकता है।

: २ :

विचार का परिस्थितियों पर प्रभाव

मनुष्य के मन की उपमा एक बाग से दी जा सकती है, जिसे चाहे चतुराई से जोता या जंगल ही बने रहने के लिए यों ही छोड़ दिया जा सकता है। पर चाहे यह जोता जाय या छोड़ दिया जाय, कुछ-न-कुछ जरूर उपजेगा। अगर लाभकारी बीज नहीं बोए गए, तो घास-फूस जमकर अपना वंश बढ़ाते रहेंगे।

जैसे माली क्यारियों को गोड़ता, घास-फूस से बचाता और जरूरत के फल-फूल उपजाता है, उसी तरह आदमी मन के बाग में अनुचित, बेकार और अशुद्ध विचारों का घास-फूस निकाल कर, उचित, उपयोगी और शुद्ध विचारों का फल-फूल सुन्दरता के साथ लगा सकता है। इस नियम से, जल्दी या देर में, मनुष्य अपनी आत्मा का चतुर माली और स्वामी, और जीवन परिचालक बन जाता है। अन्तर में विचार के नियम प्रगट होने लगते हैं और दिन-दिन वह विशेष शुद्धता के साथ यह महसूस करने लगता है कि विचार-शक्ति और मनस्तत्व किस प्रकार चरित्र, परिस्थिति और भाग्य का निर्माण करते हैं।

विचार और चरित्र एक वस्तु है। क्योंकि चरित्र केवल वातावरण और परिस्थिति में प्रगट हो सकता है, इसलिए मानव-जीवन की बाह्यावस्था का आन्तरिक अवस्था से मधुर सम्बन्ध रहता है। इसका यह मतलब नहीं है कि किसी खास समय में किसी आदमी की स्थिति उसके पूर्ण चरित्र का सच्चा निर्देश करती है, पर इसका अर्थ है कि उस स्थिति का अन्तर के किसी प्रमुख विचार-तत्व से घनिष्ट सम्बन्ध है।

प्रत्येक मनुष्य वहीं रहता है, जहाँ उसके 'जीवन के नियम' उसे रखते हैं। जिन विचारों से उसका चरित्र गठित होता है वे ही उसे उसकी विशेष स्थिति तक पहुँचाते हैं। उसके जीवन-व्यापार में 'संयोग' का कोई तत्व नहीं रहता। जीवन अभंग नियमों का प्रतिफल है। अपनी स्थिति से असन्तुष्ट रहने वालों के लिए भी यह उतना ही सत्य है, जितना सन्तुष्ट रहने वालों के लिए।

उन्नत और विकासशील जीव होने के कारण मनुष्य ऐसी स्थिति में रहता है, जहाँ वह यह सीख सकता है कि मैं विकास कर सकता हूं। कोई परिस्थिति एक आध्यात्मिक शिक्षा देकर दूसरी परिस्थिति को स्थान देने के बाद चली जाती है।

जब तक मनुष्य अपने को बाह्य अवस्था का गुलाम समझता है तब तक वह परिस्थितियों से बाधित होता है, पर ज्योंही

वह यह अनुभव करने लगता है कि मैं एक उत्पादक शक्ति हूं और उस मिट्टी और बीज पर शासन कर सकता हूं जिससे परिस्थिति विकसित होती है, वह अपना सच्चा स्वामी बन जाता है।

हरएक आदमी जिसने कुछ दिन भी आत्म-संयम और आत्म-शुद्धि का अभ्यास किया है, यह जानता है कि परिस्थितियां विचार से विकसित होती हैं। उसने यह ज़रूर ही देखा होगा कि मानसिक अवस्था के परिवर्तन के अनुपात से ही बाह्य परिस्थितियों में भी परिवर्तन होता है। यह इतना सत्य है कि ज्योंही मनुष्य चरित्रगत दोषों के सुधार में लगन के साथ लग जाता है और जल्दी उन्नति करता है उस समय उसे एक के बाद एक अनेक ऊँचा-नीची परिस्थितियों से होकर गुज़रना पड़ता है।

जिस वस्तु को आत्मा गुप्त रूप से आश्रय देती है वही उसे आकर्षित करती है, वह जिससे प्रेम करती या डरती है उसकी ओर खिंचती भी है। आत्मा अपनी पोषित महत्त्वाकांक्षाओं की ऊंचाई पर पहुंचती और अशुद्ध वासनाओं की सतह पर गिरती है। परिस्थितियां ही वे साधन हैं, जिनके द्वारा आत्मा अभीष्ट वस्तु प्राप्त करती है।

मन के बोए या गिरे हुए हरएक विचार बीज में जमने पर,

जल्दी या देर से, कार्य का फूल खिलता और परिस्थिति और अवसर का फल लगता है। सद्विचार सुफल और दुर्विचार कुफल देते हैं।

विचार के अन्तर्जगत के अनुरूप ही परिस्थिति का बहिर्जगत बनता है। प्रिय या अप्रिय बाह्यावस्था ही वे उपकरण हैं जो व्यक्ति-विशेष का अन्तिम कल्याण करते हैं। मानव अपनी खेती खुद काटता है, इससे सुख या दुःख दोनों से वह शिक्षा ग्रहण करता है।

अन्तर की जिस इच्छा, आकांक्षा या विचार से मनुष्य शासित होता है, उसीका अनुगमन कर अन्त में वह उसे अपने जीवन की बाह्य परिस्थिति में फलते और पूर्ण होते देखता है। विकास और स्थिति के अनुरूप बन जाने का नियम सब जगह पाया जाता है।

भाग्य या परिस्थिति के अत्याचार से नहीं, बल्कि तुच्छ विचारों और नीच वृत्तियों के मार्ग से ही मनुष्य जेल जाता है। सिर्फ बाह्यशक्ति के दबाव से शुद्ध हृदय एकाएक पाप में प्रवृत्त नहीं होता। पाप-पूर्ण विचार हृदय में बहुत दिनों तक गुप्त रूप से पलता रहता है, अवसर की घड़ी उसकी निहित शक्ति प्रकट कर देती है। परिस्थिति मनुष्य को बनाती नहीं, उसके सामने उसका सच्चा रूप रख देती है। पापी वृत्ति ही वह

अवस्था है जो पाप और उसके सहचर दुःख की ओर बढ़ाती है। पुण्य भाव में सतत् अभ्यास ही पुण्य और शुद्ध आनन्द की ओर ले जाता है। अपने विचार का मालिक और हाकिम होने के कारण मानव ही अपना निर्माता, वातावरण गढ़ने वाला, और रचयिता है। आत्मा जन्म-काल में भी अपनी अनुकूल अवस्था में रहती है और फिर लोक-यात्रा के पद-पद पर अपने को प्रकट करने वाले 'परिस्थितियों के संगठन' को आकर्षित करती है। ये परिस्थितियां उसकी निजी शुद्धता या अशुद्धता, बल या कमजोरी की प्रतिविम्ब हैं।

मानव की विशेष इच्छाएं, कल्पनाएं और महत्त्वाकांक्षाएं पद-पद पर बाधित होती हैं। आन्तरिक विचार और मनोरथ, चाहे शुद्ध हों या अशुद्ध, अपना ही भोजन खाकर पोषित होते हैं। हमारा भाग्य गढ़ने वाली दैवी शक्ति हमारे ही अन्दर मौजूद है। वह शक्ति हमारी आत्मा ही है। आदमी खुद अपनी बेड़ियों से जकड़ा हुआ है। विचार और कर्म ही भाग्य के 'जेलर' हैं—नीच होने पर वे क़ैद करते हैं। वे स्वतन्त्रता के देवदूत भी हैं—जो उच्च होने पर मानव को मुक्त करते हैं। आदमी जिस चीज के लिए कामना या प्रार्थना करता है, वह नहीं मिलती, पर न्याय के साथ जिसे अर्जित करता है, वही प्राप्त होती है। उसकी कामनाएं और प्रार्थनाएं तभी सुनी और

पूरी की जाती हैं, जब उनसे विचार और कर्म का मेल रहता है।

इस सत्य के प्रकाश में, फिर परिस्थितियों से झगड़ने से क्या फ़ायदा ? मतलब यह है कि बाहर इन्सान बराबर कार्य के खिलाफ़ विद्रोह कर रहा है और साथ ही—अन्तर में, उसके कारण को धारण कर पोषण करता है। हो सकता है कि यह कारण ज्ञात पाप या अज्ञात दुर्बलता हो, पर यह इन्सान की कोशिशों में हठ के साथ बाधा डालता और इस तरह 'इलाज' खोजता है।

आदमी अपनी स्थिति को सुधारने को बेचैन रहता है पर अपने को सुधारना नहीं चाहता। इसीसे वह बन्धन में पड़ा रहता है। जो आत्म-दमन और कष्ट-सहन से नहीं डरता, वह लक्ष्य-सिद्धि में कदापि असफल नहीं हो सकता। यह लौकिक और पारलौकिक दोनों तरह की वस्तुओं के लिये समान रूप से सत्य है। जिसका एक मात्र ध्येय पैसा पैदा करना है, उसे भी ध्येय की प्राप्ति के लिए महान व्यक्तिगत बलिदान करने के लिए तैयार रहना चाहिए। फिर उसके लिए कितना अधिक बलिदान जरूरी है, जो शक्तिवान, संयमित और संतुलित जीवन का अभिलाषी है ?

एक बड़ा ही गरीब आदमी है। उसे फ़िक्र है कि मेरे

घरेलू सुख और वातावरण में सुधार हो। फिर भी वह हमेशा काम से जी चुराता और सोचता है कि कम मजदूरी मिलने की वजह से मुझे मालिक को धोखा देने का हक़ है। ऐसा व्यक्ति सच्ची उन्नति के मूलाधार सिद्धान्तों का प्रथम तत्त्व भी नहीं जानता। वह न सिर्फ अपनी गिरी दशा से उठने के लिए ही बिलकुल अयोग्य है बल्कि काहिल, भ्रामक और अपुरुषोचित विचारों में रहने और उनके अनुसार आचरण करने के कारण वह वस्तुतः अपने को अधिक गहरी पतितावस्था की ओर खींच रहा है।

एक अमीर आदमी अपनी रसना लोलुपता के कारण बराबर एक दुःखदायी रोग का शिकार बना रहता है। छुटकारा पाने के लिए वह बहुत-सा धन खर्चने को तैयार है, पर अपना पेटूपन छोड़ना नहीं चाहता। कीमती और अप्राकृतिक भोजन से वह अपना स्वाद तृप्त करना चाहता है पर साथ-ही-साथ तन्दुरुस्ती भी गंवाने को तैयार नहीं। ऐसा व्यक्ति तन्दुरुस्ती का हकदार नहीं, क्योंकि उसने स्वस्थ-जीवन के प्राथमिक सिद्धांत भी अभी नहीं सीखे हैं।

एक व्यक्ति मजदूरों का मालिक है, जो नियत मजदूरी देने से बचने के लिए कुटिल तरीके अमल में लाता है और ज्यादा मुनाफे की उम्मीद में मजदूरों की मजदूरी घटा देता है। ऐसा

आदमी उन्नति के सर्वथा अयोग्य है और धन और मर्यादा का दिवाला निकलने पर परिस्थितियों के मत्थे दोष मढ़ता है। उसे यह नहीं मालूम कि अपनी अवस्था का एकमात्र निर्माता वह स्वयं ही है।

मैंने ये तीन उदाहरण सिर्फ इस सत्य को स्पष्ट करने के लिए रखे हैं कि मनुष्य ही अपनी अवस्था का कारण है (यद्यपि हमेशा वह अनजाने ही कारण बन जाता है।) सदुद्देश पर दृष्टि रखते हुए भी, वह उद्देश से अनमेल विचार और मनोरथ को प्रोत्साहन देकर सिद्धि में बाधा डालता है, ऐसे असंख्य उदाहरण रखे जा सकते हैं, पर यह जरूरी नहीं है। पाठक चाहे तो स्वयं अपने मन और जीवन पर विचार के नियमों का कार्य देख सकते हैं। बगैर इसके सिर्फ बाहरी घटनाओं से तर्क का आधार तैयार नहीं हो सकता।

परिस्थितियां इतनी जटिल और विचार का मूल इतना गहरा होता है कि हरएक व्यक्ति के आनन्द की अवस्था में इतना बड़ा भेद होता है कि किसी मनुष्य के एकमात्र जीवन के बाह्य रूप को देखकर हम उसकी आत्मा की अवस्था जान नहीं सकते। किसी दिशा में आदमी सच्चा होने पर भी दुखी रह सकता है। और कुछ दिशाओं में बेईमान या झूठा होनेपर भी पैसा कमा सकता है। पर इससे यह नतीजा निकालना कि अमुक व्यक्ति

किसी खास ईमानदारीके कारण तरक्की करता है और दूसरा किसी खास बेईमानी के कारण अवनति करता है, यह एक ऐसे छिछले तर्क का फल है, जिसमें यह मान लिया गया है कि बेइमान आदमी पूर्णतः पापी और ईमानदार पूर्णतः पुण्यात्मा है। गहरे ज्ञान और विस्तृत अनुभव के प्रकाश में ऐसा निर्णय अशुद्ध मालूम पड़ता है। बेईमान में कुछ ऐसे प्रशंसनीय गुण भी पाये जाते हैं जो दूसरों में नहीं मिलते और ईमानदार में भी ऐसे घृणित दुर्गुण मिल सकते हैं जो दूसरे में नहीं। वह ईमानदार अपने सच्चे विचारों और कार्यों का सुफल पाता और अपने दुर्गुण-जनित दुखों को भी स्वयं भोगता है। इसी भाँति बेईमान आदमी भी अपना सुख-दुःख संग्रह करता है।

ऐसा ख्याल कि मनुष्य अपने सद्गुणों के कारण दुःख भोगता है, मानव के झूठे अहंकार को बड़ा प्यारा लगता है। पर जब तक मनुष्य मन से अपवित्र, कटु और अस्वस्थ विचार को बाहर निकाल नहीं फेंकता और आत्मा पर पड़े हुए पाप के हरएक धब्बे को धो नहीं डालता, तब तक उसे यह जानने या कहने का कोई हक नहीं है कि उसके दुःख दुर्गुणों के नहीं सद्गुणोंके फल हैं। 'महान पूर्णता' तक पहुँचनेके पहले ही उसे मार्गमें अपने मन और जीवन में व्याप्त उस परम न्यायपूर्ण 'महान नियम' का ज्ञान होगा, जो सत् की जगह असत् और असत् के लिए सत् कदापि नहीं दे सकता। ऐसा ज्ञान मिलने पर और अपने पिछले अज्ञान

और अन्वतापर गौर करनेसे उसे विदित होगा कि मेरा जीवन सदा न्याय से परिचालित था और है तथा मेरा अच्छा या बुरा अनुभव मेरी अविकसित पर विकासशील आत्मा का न्याय युक्त 'कार्य' था।

सद्‌विचार और सत्कर्म से कदापि कुफल पैदा नहीं हो सकता। दुर्विचार और दुष्कर्म से सुफल कदापि पैदा नहीं हो सकता। 'रोपे पेड़ बबूल तो, आम कहां से होय?' प्राकृतिक संसार में लोग इस नियम को जानते और तदनुसार आचरण करते हैं, पर आध्यात्मिक और अंतर्जगत में कुछ थोड़े लोग ही इस तत्त्व को जानते हैं, अतः सहयोग नहीं देते यद्यपि यहां भी यह नियम उसी सरल और अभंग रूप से व्याप्त है।

दुःख सर्वदा किसी ओर मलिन विचार का फल है। वह इसका सूचक है कि वह व्यक्ति अपने और अपने अस्तित्वके नियम के खिलाफ व्यवहार कर रहा है। दुःख का एकमात्र और महान उपयोग बेकार और अशुद्ध वस्तु को जलाना और शुद्ध करना है। मैल कट जाने पर सोना गलाते रहने में कोई तत्त्व नहीं। पूर्ण विशुद्धात्मा और प्रकाशमान जीव कदापि दुःख नहीं भोग सकता।

दुःख के साथ जिन अवस्थाओं का मुकाबला मनुष्य को करना पड़ता है वे उसीके मानसिक वैषम्य के परिणाम हैं। सुख के साथ जिन अवस्थाओं का मुकाबला मनुष्य को करना

पड़ता है वे उसीके मानसिक साम्य या माधुर्य के परिणाम हैं। सद्विचार का माप संसारी विभव नहीं, वरन आनन्द है। दुर्विचार का माप संसारी विभव का अभाव नहीं, वरन पतितावस्था है। एक व्यक्ति अधम और धनी हो सकता है, या रंक और सुखी हो सकता है। आनन्द और सम्पत्ति में तभी मेल होता है जब सम्पत्ति का उचित और सदुपयोग होता है। रंक पुरुष तभी पतन को प्राप्त होता है जब वह अपने भाग्य का अन्याय से रखा हुआ बोझ समझने लगता है।

दरिद्रता और विलासिता पतन की दो सीमाएं हैं। ये दोनों ही समान रूप से अस्वाभाविक हैं और मानसिक उच्छृंखलता के परिणाम हैं। जब तक मानव सुखी, स्वस्थ और उन्नतिशील नहीं है, उसकी दशा ठीक नहीं। अन्तर और बाह्य, मानव और उस के वातावरण के मधुर समन्वय का परिणाम सुख, स्वास्थ्य और उन्नति है।

मानव तब मानव बनना शुरु करता है जब झंखना, चीखना और गाली देना छोड़कर वह अपने जीवन के गुप्त संचालक 'न्याय' की खोज में लगता है और अपने को उस संचालक के अनुकूल बनाते हुए अपनी दुरवस्था का कारण दूसरों को मान कर गाली देना छोड़ देता है। वह तभी मानव बनता है, जब बलवान और उच्च विचारों द्वारा अपना निर्माण करता है और

परिस्थिति को दोषी न समझ उन्हें अपनी उन्नति में सहायक और हृदय की गुप्त शक्तियों और सम्भावनाओं को खोजने में साधन मानकर उपयोग में लाता है।

ब्रह्मांड के शासन का तत्व 'नियम' है, उच्छृंखलता नहीं। जीवन का सार तथा प्राण न्याय है, अन्याय नहीं। संसार के आध्यात्मिक राज्य में संचालक और विधायक शक्ति धर्म है, पाप नहीं। संसार का सच्चा रूप परखने के लिए अपना सुधार करना चाहिए। आत्म-सुधार की क्रिया में मनुष्य यह देखेगा कि लोगों और वस्तुओं के सम्बन्ध में अपने विचार बदलते ही उनका भी उसके प्रति व्यवहार बदल जायगा।

इस सत्य का प्रमाण प्रत्येक व्यक्ति में वर्तमान है। नियमित अन्तर्दर्शन और आत्म-विश्लेषण से सुगमता पूर्वक इसकी खोज हो सकती है। किसी व्यक्ति को अपना विचार पूरी तरह बदलने दो, बस वह जीवन की भौतिक स्थिति में शीघ्र ही नया रूप देख कर चकित हो जायगा। लोगों का ख्याल है कि विचार शुद्ध रखा जा सकता है, पर यह असंभव है। शीघ्र ही विचार स्वभाव का रूप धारण करता है, और स्वभाव घनीभूत होकर परिस्थिति बन जाता है। पाशव विचार मद्यपता और कामुकता का रूप धारण करते हैं; फिर दरिद्रता और रोग की परिस्थिति में घनीभूत हो जाते हैं। हरएक तरहके दूषित विचार दुर्बल और भ्रान्तिपूर्ण

स्वभाव का रूप धारण कर बाधक और दुःखद परिस्थिति के रूप में घनीभूत हो जाते हैं। भय, शंका, अस्थिर बुद्धि के विचार दुर्बल, पौरुषहीन और अदृढ़ स्वभाव धारण कर, असफलता, गरीबी, गुलामी और पराधीनता के रूप में घनीभूत होते हैं। आलसी विचार गन्दगी और बेईमानी का स्वभाव बनकर नीचता और भिखमंगी की अवस्था में घनीभूत होते हैं। द्वेष और निन्दाभाव अनाचार और हिंसा का रूप धारणकर हानि या दुर्दंड की अवस्था के रूप में घनीभूत होते हैं। हरएक तरह के स्वार्थमय विचार स्वार्थ और आत्म-लाभ का स्वभाव बनकर न्यूनाधिक दुःख की अवस्था में घनीभूत होते हैं। दूसरी ओर हरएक तरहके सुन्दर विचार शील और विनय का स्वभाव धारण कर अनुकूल और आनन्दपूर्ण अवस्था में घनीभूत होते हैं। शुद्ध विचार आत्मदमन और नशा आदि से उदासीनता का स्वभाव बनकर विश्वास और शान्ति की अवस्था में घनीभूत होते हैं। साहस, आत्म-विश्वास संकल्प पुरुषोचित स्वभाव धारण कर सफलता, विपुलता और स्वाधीनता की अवस्था में घनीभूत होते हैं। पुष्ट विचार शुद्ध और उद्योग का स्वभाव धारण कर आनन्द की अवस्था में घनीभूत होते हैं। कोमल और क्षमापूर्ण विचार मृदुल स्वभाव बनकर रक्षा और त्राणकारी अवस्था में घनीभूत होते हैं। प्रेममय और निस्वार्थ विचार दूसरे के लिए खुद को

भूल जाने का स्वभाव बनकर निश्चय और स्थायी उन्नति और सच्ची सम्पदा की अवस्था में घनीभूत होते हैं।

कोई खास तरह का विचार, अच्छा हो या बुरा, पुराना होने पर चरित्र और परिस्थिति पर प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता। प्रत्यक्ष रूप से कोई व्यक्ति अपनी परिस्थिति नहीं चुन सकता, पर विचार चुन सकता है। इस तरह वह अप्रत्यक्ष रूप से अपनी परिस्थिति का निर्माण करता है।

जिन विचारोंको मनुष्य आश्रय देता है, प्रकृति उनकी पूर्णता में सहयोग देती है—और ऐसे अवसर उपस्थित होते हैं जो शीघ्र ही सद्विचार या दुर्विचार की सतह पर लाकर प्रगट कर देते हैं।

अगर कोई अपना पापपूर्ण विचार त्याग दे तो सारा संसार उसके प्रति कोमल और सहयोग देने को तैयार हो जावेगा। उसे अपना कमजोर और अस्वस्थ विचार त्यागने दो, बस उसके संकल्प में सहायता देने के लिए अवसर उपस्थित होने लगेंगे। उसे अच्छे विचारों को स्थान देने दो, फिर कभी दुर्भाग्य दुरवस्था या लज्जा के साथ उसे बांधकर नहीं रह सकता। यह दुनिया उस शीशेके यंत्र की तरह (Kalei doscope) है, जिसमें प्रतिक्षण प्रतिविम्बित होने वाले विविध रंग, तुम्हारे ही चिर-चंचल विचारों का सुन्दर और सुघर चित्र हैं।

मन में जैसी इच्छा होगी, तुम भी होगे उसी समान,
तुच्छ 'परिस्थिति' शब्द करेगी असफलता को तोष प्रदान।
किन्तु जीवको सदा घृणा है शब्द 'परिस्थिति' से यह जान,
अपने हाथ मुक्ति है अपनी, यह स्वतन्त्र है जीव महान।

देश-काल पर विजय प्राप्त कर शासन करता नृपति समान,
गरबीले 'संयोग' कुशल ठग को दिखलाता नीचा स्थान
तथा स्ववश कर अधम परिस्थिति को करता आदेश प्रदान,
श्रीहत कर, चरणों के नीचे देता है सेवक-सा स्थान।

प्रबल 'मानवी इच्छा' जो है एक अदृश्य शक्ति बलवान,
वह है स्वयं अमर आत्मा की शक्तिशालिनी प्रिय सन्तान।
चाहे पड़े मार्ग में बाधक कठिन वज्र की भी दीवार
किन्तु बेध सकती है हँसकर लक्ष्य सिद्धिहित, करती पार।

धैर्य न खो बैठो, विलम्ब लख, मत अधीर हो हे मतिमान,
ठहरो, करो प्रतीक्षा, विचलो नहीं, हृदय में भर कर ज्ञान।
जब देता आदेश जीव है, आत्मा का होता उत्थान,
नर की कौन कहे सुरगण भी पालन करते हैं सुख मान।

: ३ :

शरीर और स्वास्थ्य पर विचार का प्रभाव

शरीर मन का गुलाम है। वह मन की गति का आज्ञा पालन करता है, चाहे स्वभावजन्य हो या विचारजन्य। बुरे विचारों की आज्ञा से शरीर रोग और क्षीणता से ग्रस्त होता और आनन्द व सुन्दर विचारों से जवानी और सुन्दरता पाकर चमकता है।

परिस्थिति की तरह रोग और स्वास्थ्य का मूल विचार है। अस्वस्थ विचार अपना रूप अस्वस्थ शरीर के ज़रिये प्रकट करता है। भय के भाव ने गोली की तरह हज़ारों आदमियों की हत्या की है और इसके द्वारा निरन्तर हज़ारों का वध हो रहा है। जो रोग का डर लेकर जीते हैं वही बीमार पड़ते हैं। चिन्ता सारे शरीर का शीघ्र ही क्षय करती और रोग के प्रवेश के लिये शरीर का द्वार खोलती है। गन्दा विचार, शरीर से भोग किये बिना भी, देह शीघ्र नष्ट कर देगा।

पुष्ट, शुद्ध और प्रसन्न विचार शक्ति और सुन्दरता के साथ शरीर का निर्माण करते हैं। शरीर एक नाज़ुक नवरूपग्राही

यंत्र है, जो अपने ऊपर अंकित होने वाले विचारों से शीघ्र प्रभावित होता है। विचार से बना हुआ स्वभाव शरीर पर जरूर असर डालेगा—भले ही अच्छा हो या बुरा।

जब तक आदमी गन्दा विचार फैलाता रहेगा, तब तक रक्त अशुद्ध और दूषित बना रहेगा। शुद्ध मन से शुद्ध जीवन और शुद्ध शरीर उत्पन्न होता है। मलिन मन से मलिन जीवन और मलिन शरीर उत्पन्न होता है। कर्म, जीवन और वाह्यरूप का स्रोत विचार है। स्रोत शुद्ध करो, सब कुछ शुद्ध हो जावेगा।

जो अपना विचार बदल नहीं सकता, उसे आहार बदलना मदद नहीं दे सकता। विचार शुद्ध कर लेने पर मनुष्य को अशुद्ध भोजन की चाह नहीं रहती।

निर्मल विचार से स्वभाव निर्मल बनता है। संत का नाम धारण करने वाला अगर अपना मन नहीं धोता तो वह संत नहीं। जिसने अपना विचार पुष्ट और पवित्र बना लिया है, उसे दुष्ट कीटाणुओं की चिन्ता करने की जरूरत नहीं।

यदि तुम शरीर को सुरक्षित रखना चाहते हो तो मन पर पहरा दो। अगर शरीर को नया रूप देना चाहते हो तो मन को सुन्दर बनाओ। ईर्षा-द्वेष, निराशा-पराजय के भाव शरीर का सौन्दर्य और स्वास्थ्य नष्ट करते हैं। मलिन विचारों से मुख मलिन होता है, 'संयोग' से नहीं। गर्व, मूर्खता और वासना से मुख पर झुर्रियां पड़ती हैं।

मैं एक ८६ साल की स्त्री को जानता हूँ, जिसका मुखमंडल एक सुन्दर और अबोध बाला के समान है। मैं एक प्रौढ़ व्यक्तिको जानता हूँ जिसके चेहरे पर विकृत रेखायें अंकित हैं। पहला मधुर और आनन्दी प्रकृति का फल है और दूसरा असन्तोष और वासना का फल है।

जैसे कमरे में हवा और रोशनी के मुक्त प्रवेशके बिना तुम्हें अच्छा और सुन्दर घर नहीं मिल सकता, वैसे ही केवल आनन्द, सद्भाव और शान्तिमय विचारों को मन में मुक्त रूप से प्रवेश से ही पुष्ट शरीर प्रफुल्ल और शान्त मुखमंडल मिल सकता है।

वृद्ध पुरुषों के चेहरे पर कुछ सहानुभूति की झुर्रियां और कुछ दृढ़ और शुद्ध विचार या वासना द्वारा अंकित रेखायें रहती हैं। इनका भेद कौन नहीं जानता? जिन्होंने सदाचार पूर्ण जीवन बिताया है, उनमें बुढ़ापा शान्त, चिन्तारहित और अस्तगामी सूर्य के समान मधुर एवं सुन्दर हो जाता है। हाल में मैंने एक दार्शनिक को मरण-शय्या पर देखा। उम्र के सिवाय वह किसी दृष्टि से बूढ़ा न था। जैसी मधुरता और शान्ति के साथ उसने जीवन बिताया था वैसे ही उसने प्राण त्याग भी किया।

शारीरिक रोगों के निवारण के लिये प्रसन्न विचार के समान कोई चिकित्सक नहीं है। शोक और संताप की छाया हटाने के लिये सद्भाव के मुकाबले दूसरा कोई सुखदाता नहीं है।

दुष्कामना, दोषदर्शन, सन्देह और ईर्षापूर्ण विचारों के साथ निरन्तर जीवन बिताना अपने बनाये जेल में रहना है। किन्तु सबका मंगल-चिंतन, सबके साथ सानन्द रहना, सबमें धीरज के साथ अच्छाई ढूंढना, ऐसे स्वार्थरहित विचार ही स्वर्ग के द्वार हैं। प्रतिदिन हरएक जीव के प्रति शान्तिमय विचारों के साथ रहना, इन विचारोंको धारण करने वालों को स्थायी शान्ति प्रदान करेगा।

: ४ :

विचार और उद्देश

उद्देश के साथ विचार गुथे बिना बुद्धि युक्त सिद्धि कदापि नहीं मिलती। अधिकांश लोगों का विचार-पोत जीवन-सागर में स्वच्छन्द बहता रहता है। लक्ष्य हीनता पाप है। ऐसा स्वच्छन्द प्रवाह उसके लिए ठीक नहीं जो खतरा और नाश से बचना चाहता है।

जिनके जीवन का एक केन्द्रीय ध्येय नहीं है, वे क्षुद्र, भय, दुख आत्मग्लानि के आसान शिकार बन जाते हैं। ये दुर्बलता के चिन्ह हैं और सुचिन्तित और सुपरिचित पापों की तरह (यद्यपि दूसरे मार्गसे) असफलता, दुःख और हानिकी ओर ले जाते हैं। शक्ति विकसित करने वाले इस संसार में दुर्बलता ठहर नहीं सकती।

मनुष्य को हृदय में एक उचित उद्देश रखकर सिद्धि के लिए प्रयत्न करना चाहिये। उसके तत्कालीन स्वभावानुसार उद्देश कोई अध्यात्मिक आदर्श या सांसारिक पदार्थ का रूप धारण कर सकता है। जो भी हो, उसे अभीष्ट उद्देश में अपनी विचार-शक्तियां दृढ़ता-पूर्वक केन्द्रित करनी चाहियें। इसी उद्देश को उसे अपना महान

कर्तव्य बनाना चाहिये और अपने विचारों को क्षणभंगुर इच्छाओं और कल्पनाओं में भटकने से बचाकर इसकी सिद्धि में लगाना चाहिये। यह आत्म-दमन और एकाग्रता का राजमार्ग है। उद्देश-सिद्धि में बार-बार असफल होने पर भी (दुर्बलता पर विजय पाने के पहले कई बार असफल होना जरूरी है) तदुत्पन्न चरित्र-दृढ़ता ही उसकी सच्ची सफलता का माप होगी और यही उसकी भावी शक्ति और विजय के आरंभ-बिन्दु का रूप धारण करेगी।

जो किसी महान उद्देश की सिद्धि के लिये तैयार नहीं हैं उन्हें निर्दोष रूप से अपने विचारों को कर्तव्य-पालन में केन्द्रित करना चाहिये। भले ही वह काम बहुत छोटा ही क्यों न जान पड़ता हो। इस तरह विचार एकत्र और केन्द्रित किये जा सकते हैं और दृढ़ता और शक्ति विकसित हो सकती है। इनके विकसित होने पर कुछ ऐसा नहीं जो सिद्ध न हो सके!

बहुत दुर्बल आत्मा भी अपनी निर्बलता जानकर और इस सत्य पर विश्वास करके कि एकमात्र अभ्यास और प्रयत्न द्वारा शक्ति विकसित हो सकती है—शीघ्र ही स्वयं प्रयत्न की ओर अग्रसर होगी, और यत्न, धैर्य और बल के सतत योग द्वारा क्रमशः विकसित होकर अन्त में दैवी शक्ति प्राप्त करेगी।

जैसे शरीर का कमजोर व्यक्ति सावधानी, और धीरज के साथ अपने को मजबूत बना सकता है, वैसे ही कमजोर आदमी

भी उचित चिन्तन के अभ्यास द्वारा अपना विचार मज़बूत कर सकता है।

दुर्बलता और लक्ष्यहीनता का त्याग करना और सोद्देश चिन्तन शुरू करना उन शक्तिवान पुरुषों की पंक्ति में बैठना है, जो सफलता को सिद्धि का एक मार्ग जानते हैं, परिस्थितियां जिनकी सेवा करती, जो दृढ़ता पूर्वक विचार, निर्भयता पूर्वक प्रयत्न और कुशलता पूर्वक सिद्धि प्राप्त करते हैं।

उद्देश ठीक कर मनुष्य को मनमें सिद्धि का सीधा मार्ग, दाएं-बाएं देखे बिना निश्चित कर लेना चाहिए। शका और भय का कठोरता के साथ बहिष्कार करना चाहिये। प्रयत्न की सीधी रेखा को टेढ़ी बेकार और बेअसर करने वाले ये बाधक-तत्व हैं। शंका और भय की भावना से न कुछ सिद्ध हुआ है और न हो सकता है। ये हमेशा असफलता की ओर ले जाते हैं। शंका और भय उठने पर संकल्प, शक्ति, कार्यक्षमता और समस्त दृढ़ विचार लुप्त हो जाते हैं।

कार्य करने की इच्छा का उद्गम यह ज्ञान है कि हम काम कर सकते हैं। भय और शंका ज्ञान के कट्टर दुश्मन हैं, जो इन्हें शरण देता है और बध नहीं करता वह क़दम क़दम पर बाधा बुलाता है। जिसने शंका और भय पर विजय पाई है उसे असफलता पर विजय मिली। ऐसे आदमी का हरएक विचार शक्ति

से सम्बद्ध है और वह हरएक कठिनाई का सामना बहादुरी और चतुराई से कर सकता है। उसके उद्देश का पौधा उचित ऋतु में लगाया गया है। वह ऐसा फूलता-फलता है, जिसका फल-फूल असमय धरती पर नहीं गिरता।

निर्भयता पूर्वक विचार उद्देश के साथ सम्बद्ध होने पर उत्पादक शक्ति बन जाता है। जो यह जानता है वह केवल चंचल विचार और अस्थिर संवेदनाओं का बंडल न रहकर सर्वदा उच्च और शक्तिवान बनने के लिये तैयार रहता है और ऐसा करने वाला अपनी मानसी शक्तियों का सचेत और बुद्धिमान विधायक बन जाता है।

: ५ :

सिद्धि में विचार-तत्व

मानव जिस वस्तु को प्राप्त करता या जिसकी सिद्धि में असफल होता है, वह वस्तु उसके विचारों का ही प्रत्यक्ष फल है। इस न्याययुक्त नियम द्वारा संचालित ब्रह्माण्ड में जहाँ 'साम्य' का अन्त होते ही पूर्ण विनाश होता है, व्यक्तिगत उत्तरदायित्व एक बड़ी चीज है। किसी आदमी की कमजोरी या ताकत, पवित्रता या अपवित्रता उसकी अपनी चीज है, दूसरे की नहीं। वही उसका कर्त्ता है, दूसरा नहीं। वही उन्हें बदल सकता है, दूसरा नहीं। उसकी अवस्था भी उसीकी वस्तु है, दूसरे की नहीं। उसके सुख दुख अन्दरसे पैदा होते हैं। वह जैसा सोचता है वैसा ही है। वह अपने निरंतर के विचार के अनुसार ही बनता है।

बली आदमी कमजोर की मदद तबतक नहीं कर सकता जबतक वह कमजोर व्यक्ति भी मदद न चाहता हो। यह सही होने पर भी, कमजोर व्यक्ति को खुद मजबूत बनना पड़ेगा। अपनी ही कोशिश से उसे वह ताकत पैदा करनी होगी, दूसरे में जिसकी

वह सराहना करता है। खुद को छोड़कर अपनी हालत दूसरा कोई नहीं बदल सकता।

सदा-से लोग ऐसा कहते और सोचते आए हैं कि बहुतेरे लोग इसलिए गुलाम हैं, चूंकि एक आदमी आततायी है। हम उस आततायी से घृणा करें। इससे कुछ बड़ी तादाद उन लोगों की भी है जो इस विचार के विरुद्ध कहते हैं—"एक व्यक्ति इसलिये आततायी है कि बहुतेरे गुलाम हैं। हम गुलामों से घृणा करें।" सच यह है कि आततायी और गुलाम अज्ञान में सहयोगी हैं और प्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे को दुख देते हुए भी हकीकत में खुद अपना नुकसान करते हैं। 'पूर्णज्ञान' पीड़ित की दुर्बलता और अत्याचारी के दुरुपयुक्त बल में नियम का 'कार्य' देखता है। 'पूर्ण प्रेम' दोनों का दुख देखकर किसी की निन्दा नहीं करता। 'पूर्ण करुणा' पीड़ित और आततायी दोनों को गले लगाती है।

जिसने दुर्बलता पर विजय पाई और सारे स्वार्थमय विचारों का वहिष्कार किया है, वह न अत्याचारी है और न पीड़ित। वह स्वतन्त्र है।

अपना विचार ऊँचा करने से ही मानव ऊँचा उठ सकता है और जय और सिद्धि पा सकता है। विचार ऊँचा उठाने से इन्कार कर वह कमजोर उदास और दुखी रहता है।

कोई सांसारिक पदार्थ पाने के लिए भी पहले आदमी को अपने विचार को गुलामी और पाशव वासनाओं से ऊपर उठाना पड़ेगा। सफलता के लिए भले ही उसे सारी पशुता और स्वार्थ छोड़ना न पड़े, पर एक अंश की बलि देनी ही होगी। जिस मनुष्य का मुख्य विचार पाशव विश्वास है वह न तो कभी स्पष्ट चिन्तन कर सकता है और न कोई नियमित योजना ही बना सकता है। वह अपनी अन्तर्शक्ति विकसित नहीं कर सकता और हर काम में असफल होगा। विचारों पर पौरुष के साथ नियन्त्रण न रखने के कारण व्यवहार पर भी नियन्त्रण नहीं रख सकता और गम्भीर उत्तरदायित्व ग्रहण करने में असमर्थ रहता है। वह स्वतन्त्र होकर काम करने और अकेले खड़े होने के लायक नहीं। बल्कि वह अपने ही विचारों से सीमित है।

बिना बलिदान के उन्नति या सिद्धि असम्भव है। किसी मनुष्य को सांसारिक सफलता उसी माप में प्राप्त होगी जिस माप में वह अपने भ्रान्त पाशव विचारों की बलि चढ़ाता, अपनी योजनाओं के विकास में चित्त एकाग्र करता और अपना संकल्प और आत्म-विश्वास सुदृढ़ करता है। वह जितना ही ऊँचा अपना विचार उठाता है, उतना ही पुरुषार्थी, सच्चा और सदाचारी बनता है, उसे उतनी ही अधिक सफलता मिलती है और सिद्धियाँ स्थायी और सुखदायक होती हैं।

संसार लोभी बेईमान और पापी की मदद नहीं करता, यद्यपि सतह पर देखने से कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है। वह सच्चे उदार और पुण्यात्मा की मदद करता है। इस सत्य को युगों से महान उपदेशकोंने भिन्न-भिन्न रूप से घोषित किया है और इसे साबित करने व जानने के लिए आदमी का सिर्फ अपना विचार अधिक उन्नत करना और निरन्तर सदाचारी बनना जरूरी है।

जीवन और प्रकृति में जो कुछ सत्य और सुंदर है या ज्ञान की खोज में जो विचार लगाए जाते हैं उन्हीं का फल बौद्धिक सिद्धियाँ हैं। कभी कभी ये सिद्धियाँ गर्व या महत्वाकांक्षा से सम्बद्ध हो सकती हैं पर उन गुणों का फल नहीं हो सकतीं। वे दीर्घकाल के कठिन श्रम और पवित्र व निस्वार्थ विचारों का स्वाभाविक विकास हैं।

आध्यात्मिक सिद्धियाँ पवित्र आकांक्षाओं की पूर्ति हैं। जिसका जीवन निरंतर उन्नत और दिव्य विचारों में बीतता है, जो पावन और निस्वार्थ भावों में रमता है वह अवश्य बुद्धिमान, उदार चरित्र होगा और प्रभाव तथा सुख का पद प्राप्त करेगा, जिस प्रकार सूर्य अपने क्षितिज तक पहुंचता और चन्द्र पूर्ण-कला प्राप्त करता है।

सिद्धि—किसी तरह की क्यों न हो—प्रयत्न का मुकुट और

विचार का ताज है। संयम, दृढ़ता, पवित्रता सदाचार और उच्च विचार की सहायता से मानव ऊँचा चढ़ता है। पशुता, आलस्य, अपवित्रता, दुराचार, और भ्रान्त विचार से वह नीचे गिरता है।

कोई व्यक्ति दुनिया में ऊँची सफलता पा सकता और आध्यात्मिक राज्य के ऊँचे शिखर पर चढ़ सकता और फिर गर्व, स्वार्थ और दुराचारी विचारों का कब्जा होने पर दुर्बलता और पतितावस्था में गिर सकता है।

सद्विचार से प्राप्त विजय केवल सतर्कता से ही कायम रह सकती है। सफलता निश्चित होने पर बहुतेरे सत्पथ छोड़ देते हैं और तत्क्षण असफलता में गिर पड़ते हैं।

चाहे व्यापार में या बौद्धिक या आध्यात्मिक जगत में हो, सब सिद्धियाँ नियम-संचालित विचारों का परिणाम हैं, एक ही नियम और तरीके से शासित होती हैं। भेद केवल सिद्धि के स्वरूप में है।

जो अल्प सिद्धि का इच्छुक है उसे अल्प बलि देनी होगी, जो अधिकका इच्छुक है उसे अधिक बलि। जिसे महान सिद्धि प्राप्त करने की इच्छा है, उसे बलि भी महान देनी होगी।

: ६ :

स्वप्न और आदर्श

संसार के रक्षक स्वप्न द्रष्टा हैं। जैसे दृश्य जगत अदृश्य पर आश्रित है, वैसे ही मानव अपने पापों, परीक्षाओं, और गन्दे पेशों में भी—एकान्त सेवी स्वप्नद्रष्टाओं के सुन्दर स्वप्नों से पालित-पोषित होता है। मानव अपने स्वप्नद्रष्टाओं को भूल नहीं सकता, उनके आदर्शों को मुरझाकर नष्ट होने नहीं दे सकता। उन आदर्शों में ही उसका जीवन है। इन स्वप्नों को वह एक न एक दिन पूर्ण होते अवश्य देखेगा।

मूर्तिकार, चित्रकार, गवैये, कवि, पैगम्बर और ऋषि-गण ही परलोक के निर्माता और स्वर्ग के विश्वकर्मा हैं। उनके जीवन धारण करने ही से यह संसार सुन्दर है। उनके बिना मानव जाति नष्ट हो जावेगी।

जो अपने हृदय में एक उच्च आदर्श, एक सुन्दर स्वप्न धारण करता है, वह एक दिन अवश्य ही उसे पूर्ण होते देखेगा। कोलम्बस एक नये संसार का स्वप्न देख रहा था, अतः उसने

अविष्कार किया। कोपरनिवस अगणित लोकों और इससे विस्तृत जगत का दृश्य देख रहा था और उसने उनका दर्शन किया। बुद्ध ने निष्कलंक सौन्दर्य, और पूर्ण शांति के आध्यात्मिक लोक का स्वप्न देखा और उन्होंने उसमें प्रवेश किया।

हृदय में 'स्वप्न' और आदर्श धारण करो। हृदय में गूंजने वाले संगीत को, मन में उठने वाले सौंदर्य को और अपने पवित्र विचारों को अलंकृत करने वाली सुछवि को प्रेमपूर्वक धारण करो क्योंकि इन्हींसे समस्त आनन्दपूर्ण अवस्थाएं और स्वर्गीय वातावरण विकसित होंगे और यदि तुम अपने स्वप्नों और आदर्शों के साथ सच्चे बने रहोगे तब अन्त में उन्हींसे तुम्हारे संसार का निर्माण होगा।

चाहना ही प्राप्त करना है। उच्चाकांक्षा ही सिद्धि है। क्या मनुष्य की नीच इच्छाएं तृप्त होंगी और पवित्र उच्चाकांक्षाएं पोषण बिना भूखे मरेंगी? ऐसा नियम नहीं है। कदापि ऐसी अवस्था नहीं हो सकती। 'माँगो और तुम्हें मिलेगा।' ऊँचे स्वप्न देखो। जैसा स्वप्न देखोगे, वैसे ही बनोगे। तुम्हारे स्वप्न ही इस बात के सूचक हैं कि एक दिन तुम क्या होगे? तुम्हारे आदर्श ही इस बात की भविष्यवाणी करते हैं कि तुम जीवन में किस रहस्य का उद्घाटन करोगे।

बड़ी-से-बड़ी सिद्धि आरम्भ में कुछ काल तक स्वप्नमात्र थी।

विशाल वट-वृक्ष वट-बीज में सो रहा है। अंडे में पक्षी स्थित है और आत्मा के उच्चतम स्वप्नों में जगता हुआ देवदूत आंख मींज रहा है। स्वप्न ही वास्तविकता के बीज हैं।

सम्भव है, परिस्थिति तुम्हारे अनुकूल न हो, पर अगर तुम किसी आदर्श पर दृष्टि रख उसकी सिद्धि के लिए प्रयत्न करोगे तो वे उस रूप में कदापि नहीं रह सकती। अन्तर से प्रगति करते हुए तुम बाहर से कभी स्थिर नही रह सकते। गरीबी और मेहनत के भार से दबा हुआ एक नौजवान है, अस्वस्थ कारखाने में वह कई घंटे काम करता है, स्कूली शिक्षा से वंचित है और उसमें भद्र-व्यवहार का अभाव है। पर वह ऊँचे-ऊंचे स्वप्न देखता है, वह बुद्धि, संस्कृति, शील-सौंदर्य की बातें सोचता है। वह जीवन की आदर्श अवस्था का चिन्तन करता और मन में निर्माण करता है। अधिक आजादी और विस्तृत क्षेत्र के स्वप्न ने उसके हृदय पर कब्जा कर लिया है। अन्तर की हलचल उसे कर्म की ओर प्रेरित करती है। वह अपना सारा फालतू वक्त और साधन—भले ही वे कम हों—अपनी अन्तर्शक्ति और क्षमता की वृद्धि में लगाता है। शीघ्र ही उसका मन बदल जाता है। अब कारखाना उसे घेर कर नहीं रख सकता। वह उसकी मनोदशा के इतना प्रतिकूल हो उठा है कि वह जीर्ण वस्त्र की तरह जीवन से फेंक दिया जाता है और वह अपनी विकासोन्मुख

शक्तियों के उपयुक्त अवसर बढ़ने पर सदा के लिए कारखाने के बाहर निकल पड़ता है। चन्द बरसों बाद इसी युवक को हम एक पूर्ण-विकसित मानव के रूप में देखते हैं। उसे अब हम उन मानसिक शक्तियों के स्वामी के रूप में देखते हैं, जिनका प्रयोग वह अनुपम बल और विश्वव्यापी प्रभाव के साथ करता है। उसके हाथों में अब महती सम्भावनाओं की डोर है। देखो, उसकी वाणी से जीवन बदल जाते हैं, स्त्री-पुरुष उसके शब्दों पर निर्भर होकर अपने चरित्र का पुनर्गठन करते हैं। सूर्य की तरह वह ऐसा स्थिर और ज्योतिपुंज केन्द्र बन जाता है, जिसके चतुर्दिक असंख्य भाग्य चक्कर काटते रहते हैं। उसने अपने यौवन का स्वप्न सिद्ध कर लिया है, अपने आदर्श के साथ एकाकार हो गया है।

हे नवयुक पाठको ! तुम भी अपने हृदय का स्वप्न सिद्ध करोगे, भले ही वह सुरूप हो या कुरूप, अथवा दोनों का मिश्रण हो, तुम जिस चीज को गुप्त रूप से विशेष प्यार करोगे, उसीकी ओर हमेशा खिंचोगे। तुम्हें अपने विचारों का उचित फल हाथों में मिलेगा। जैसी करनी वैसी भरनी। कम-न-बेश। तुम्हारा वातावरण कैसा भी हो, पर तुम अपने विचार आदर्श या स्वप्न के साथ गिरोगे, स्थिर रहोगे या उठोगे। तुम अपने ऊपर कब्जा करने वाली इच्छा की तरह ही छोटे होगे और

अपने पर शासन करने वाली महत्वाकांक्षा के समान ही महान होगे। एक अंग्रेजके सुन्दर शब्दोंमें—भले ही तुम मुनीमी करते हो, पर फौरन ही वह दरवाजा पारकर बाहर निकल जावोगे जिसे अब तक तुमने अपने आदर्श का बाधक जान रखा था। अभी कलम कान पर मौजूद ही है, उंगलियों पर स्याही के धब्बे सूखे भी नहीं और तुम अपने को बाहर श्रोताओं के बीच पाओगे । तत्क्षण वहीं पर तुम्हारी उच्चाकांक्षा का स्रोत उमड़ पड़ेगा। भले ही तुम भेड़ों के चरवाहे हो पर एकाएक चकित और मुंह बायें हुए शहर में पहुँच कर तुम अपनी आत्मा के नेतृत्व में अपने 'प्रभु' की चित्रशाला में भ्रमण करने लगोगे। कुछ काल बाद वह बोल उठेगा "अब मुझे कुछ सिखाना शेष नहीं है । अभी हाल में जहां तुम भेड़ चराते हुए महान स्वप्न देख रहे थे अब वहीं 'प्रभु' बन गए। आरा तख्ता छोड़कर अब तुम लोकोद्धार का कार्य हाथ में ले लोगे।"

जो विचारहीन अज्ञानी और काहिल हैं वे खुद वस्तुओं के बजाय सिर्फ उनको बाह्य परिणाम देखकर भाग्य, दैव, या संयोग की बातें करते हैं। किसी व्यक्ति को देखकर वे कहते हैं "अहा! वह कैसा भाग्यवान है।" वे किसी को विद्वान देखकर कहते हैं—"अहा ! वह कैसा भाग्यशाली है !" किसी के साधुचरित और महान प्रभावको देखकर वे कह उठते हैं "हर काम

में तकदीर उसकी कैसी मदद करती है । वे उन परीक्षाओं, असफलताओं और संघर्षों को नहीं देखते, जिनका सामना उसे अपने अनुभव प्राप्त करने में करना पड़ा है । उन्हें उन बलिदानों और अथक परिश्रम और विश्वास का ज्ञान नहीं जिन्हें अपना स्वप्न सिद्ध करने में उन सफल पुरुषों ने लगाया है । वे उनकी निराशा और अन्तर्पीड़ा से अपरिचित हैं और केवल उनकी वर्तमान प्रसन्नता और ज्योति देखकर उनके सौभाग्य की सराहना करने लगते हैं । वे उनकी दुर्गम लम्बी यात्रा को नहीं देखते और सिर्फ सुखद सिद्धि देखकर उसे भाग्यशाली कह उठते हैं । वे 'विधि' न समझते हुए केवल फल देखकर संयोग या प्रारब्ध की बात कहते हैं ।

सम्पूर्ण मानवी कर्मों में 'प्रयत्न' और फल होते हैं । 'प्रयत्न' का बल ही फल का मापक है । प्रतिभा, शक्ति भौतिक, बौद्धिक या आध्यात्मिक गुण सब प्रयत्न के ही फल हैं । वे पूर्णता प्राप्त विचार, प्राप्त ध्येय या सिद्ध स्वप्न हैं ।

जिस स्वप्न से तुम अपना मन गौरवान्वित करोगे, जिस आदर्श को हृदय पर सिंहासनासीन करोगे—उसीसे तुम्हारे जीवन का निर्माण होगा और तुम वही बनोगे ।

: ७ :

शान्ति

शान्ति ज्ञान का एक सुन्दर रत्न है। यह आत्म-संयम में दीर्घकालीन अभ्यास और प्रयत्न का फल है। शान्ति का रहना परिपक्व अनुभव और विचार के नियमों और गति-विधि के असाधारण ज्ञान का सूचक है।

मानव उसी अनुपात से शान्ति प्राप्त करता है, जितना वह अपनेको एक विचार-विकसित जीव समझता है। ऐसा ज्ञान होने पर वह दूसरों को भी अपने समान जीव समझने लगता है। सम्यक ज्ञान विकसित होने पर वह कार्य कारण का सम्बन्ध अधिक स्पष्टता से देखने लगता है और ग्लानि, संताप, दुख और झंखना छोड़कर वह स्थिर, दृढ़ और शान्त बन जाता है।

शान्त पुरुष अपने पर शासन करना सीख लेने पर दूसरों के साथ उचित व्यवहार करना भी सीख जाता है। दूसरे भी उसके आध्यात्मिक बल का आदर करने लगते हैं और अनुभव करने लगते हैं कि हम अब उससे कुछ सीख सकते हैं और उस पर विश्वासकर सकते हैं। मानव जितना ही शान्त प्रकृति बन जाता है

उसके प्रभाव, सफलता और भलाई की शक्ति में उतनी ही वृद्धि हो जाती है। यहां तक कि एक मामूली व्यापारी भी ज्यों-ज्यों आत्म-संयम और संकल्प में विकसित होता जायगा त्यों-त्यों उसे व्यापार में उन्नति दीख पड़ेगी। लोग हमेशा ऐसे व्यक्ति से व्यवहार रखना अच्छा समझेंगे जिसका स्वभाव दृढ़ और 'सम' रहता है।

दृढ़ और शान्त पुरुष सदैव प्रेम और प्रतिष्ठा पाता है। वह मरुभूमि में छायादार वृक्ष है, तूफान में शरणदायी कगार है। शान्ति-पूर्ण, हृदय मधुर-प्रकृति युक्त संयमित जीवन को कौन प्यार नहीं करता? ऐसे सद्गुण-सम्पन्न पुरुष के लिए वर्षा या धूप का क्या भय? ये सर्वदा शान्त, मधुर और गम्भीर रहते हैं। चरित्र का वह सुन्दर साम्य जिसे हम शान्ति कहते हैं संस्कृति का अन्तिम पाठ है। यही जीवन का फूलना और आत्मा का फलना है। यह ज्ञानकी तरह मूल्यवान और कंचनसे भी अधिक हाँ, स्वर्ण से भी विशेष वाञ्छनीय है। शान्त जीवन की तुलना में—सत्य के महासागर में, लहरों के नीचे, तूफानों की पहुंच के परे अनन्त शांति में निवासित जीवन—अहा! इसकी तुलना में अर्थ लाभ कितनी तुच्छ वस्तु है!

"ऐसे बहुतेरे लोग हैं, जो अपने धधकते हुए क्रोधी स्वभाव के कारण प्रकृति के सुन्दर और मधुर अंश को नष्ट कर अपने जीवन को कटु बना देते हैं, अपने चरित्र का साम्य नष्ट कर

शत्रुता मोल ले लेते हैं। ऐसे बहुत कम लोग हैं, जिनमें पूर्ण संयम और वह सुन्दर साम्य है जो पहुंचे हुए चरित्र का लक्षण है।

हाँ, मानवता अनियंत्रित वासना की लहरों में बह रही है। गहरे दुःखसे क्षुब्ध और चिन्ता व शङ्का द्वारा उद्वेलित हो रही है। केवल वही बुद्धिमान है, जिसके विचार संयमित और पवित्र हैं, जो अपनी आत्मा के आंधी-तूफानों पर अनुशासन करता है।

हे तूफ़ान उद्वेलित आत्माओ ! चाहे तुम कहीं हो और किसी स्थिति में हो, इस बात को खूब जान लो—जीवन के महा-सागर में आनन्द के द्वीप मुस्करा रहे हैं। तुम्हारे आदर्श का उज्वल तट तुम्हारे शुभागमन की प्रतीक्षा कर रहा है। विचार की पतवार पर मजबूती से अपना हाथ संभाले रहो। तुम्हारी आत्मा के पोत में वह शक्तिवान 'स्वामी' लेटा हुआ है। वह सो रहा है। उसे जगाओ। आत्म-संयम बल है, उचित विचार ही प्रभुता है। शान्ति शक्ति है। अपने हृदय में कहो—"शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!"